लखनऊ का तबला - घराना

रूचि रानी गुप्ता

सन् 1775 में नवाब आसफुद्यौला अवध के नवाब बने। गद्दी पर बैठते ही उन्होंने फैजाबाद छोड़कर लखनऊ को राजधानी बनाया और अपने कलाकारों, नर्तकों तथा कलावन्तों सहित लखनऊ आ बसे। उसी समय से लखनऊ में संगीत और नृत्य कला का जो दौर शुरू हुआ, उसने बाद के वर्षों मे लखनऊ को एक सशक्त सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

हकीम मोहम्मद करम इमाम अपनी पुस्तक ''मद्नुल मौसीकी'' में लिखते हैं, ''दिल्ली के संगीतकारों, कलावन्तों, नर्तकों व कलाकारों का एक बड़ा हिस्सा नवाब आसफुद्दौला के साथ ही लखनऊ आ गया था। ''हुआ यह कि नवाब शुजाउद्दौला के काल में जो कलाकार फैजाबाद नहीं पहुँच सके थे, अब वे लोग भी लखनऊ – दरबार में प्रश्रय पाने, नवाब का संरक्षण प्राप्त करने की लालसा से दिल्ली छोड़कर लखनऊ चले आये । कहते हैं। ''लगभग इसी काल में लखनऊ के तबला घराने के संस्थापक उस्ताद मिया बख्शू खाँ दिल्ली छोड़कर लखनऊ आ गये।'' एक अन्य मतानुसार ''मियां बख्शू खाँ फैजाबाद में नवाब शुजादद्दौला के दरबार में नौकर थे और नवाब के साथ ही फैजाबाद से लखनऊ आये थे। '' ये दोनों ही मत परस्पर विरोधी हैं। परन्तु प्रमाणों के अभाव में यह तय कर पाना मुश्किल है कि दोनों मे से कौन– सा मत सही है,

* शोध छात्रा, संगीत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

और कौन–सा गलत। जो भी हो, यह सुनिश्चित है, मियां बख्शू खाँ दिल्लीवासी थे। दूसरे संगीतकारों की तरह वह भी नवाबी दरबार में संरक्षण प्राप्त करने के उद्देश्य से अवध आये थे और आसफुद्दौला के शासनकाल में वह लखनऊ मे ही बस गये थे लखनऊ के तबला – घराने के संस्थापक यही मियां बख्शू खाँ थे।

तबले की उत्पत्ति

तबले के बिना किसी संगीत – समारोह की कल्पना आज प्रायः असंभव है। इस लोकप्रिय तालवाद्य के उद्भव के सम्बंध में अनेक परस्पर – विरोधी मत प्रचलित हैं। फिर भी, दिल्ली के उस्ताद सुधार खां को इसका जन्मदाता मानने वालों की संख्या सर्वाधिक है। उस्ताद सुधार खां एक महान् पखावज – वादक थे। कहा जाता है कि एक खास मुकाबले की महफिल में उन्होंने यह अनुभव किया कि समान– प्रसिद्धि वाले दिल्ली के ही अपने प्रतिद्वन्दी, भवानी दास, से बढ़चढ़ कर मैं नहीं बजा सकता, अतः घोर नैराश्य में उन्होंने अपनी पखावज के दो टुकड़े कर डाले और मौजूदा अवनद्ध वाद्य तबले की ईजाद की। इस नवीन वाद्य के लिये उन्होंने गतें, टुकड़े और बोल तैयार किये।

घराने की उत्पत्ति

यहाँ तक 'घराना' शब्द के प्रचलन का प्रश्न है, संगीत के क्षेत्र में विभिन्न संगीत–विधाओं के साथ 'घराना' शब्द जोड़ने की परम्परा का आरम्भ, अकबर कालीन मियां तानसेन के बाद ही हुआ माना जाता है। पारिभाषित तौर पर 'घराना' शब्द की व्युत्पत्ति 'घर' से हुई हैं, जिसका अर्थ हैः वंश या परिवार और 'घराना' शब्द का अर्थ है, उस 'घर' विशेष में प्रचलित रीति, एक निश्चित परम्परा या एक निश्चित विशिष्टता।

किसी भी घराने के लिये जरूरी है कि उसके पीछे संगीतकारों का एक ऐसा परिवार होना चाहिये जिसके सदस्य अपनी संगीत–परम्परा को अपने शागिर्दों और पुत्रों के माध्यम से अगली पीढ़ी में पहुँचाते रहे हों। घराना तभी कहलायेगा जब उसकी संगीत–शैली दूसरे घरानों से भिन्न और

लखनऊ का तबला–घराना

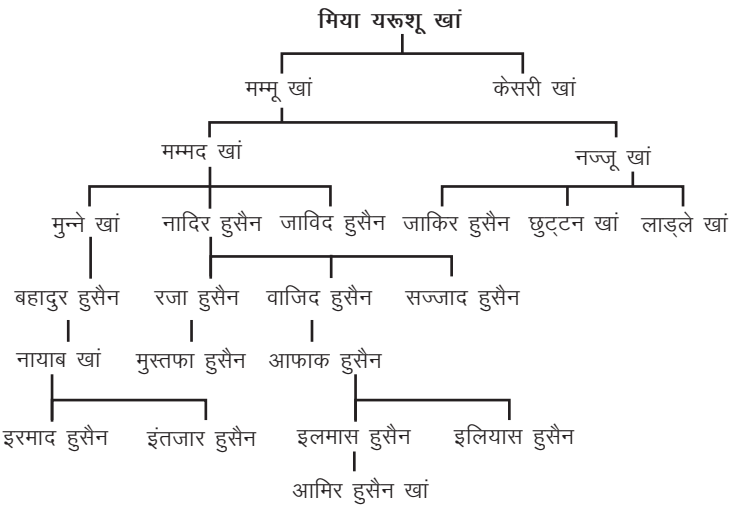

चिन्हित नाम घराने की वर्तमान पीढ़ी में है।

विशिष्ट हो। कोई भी वंश–परम्परा तभी घराना कहलायेगी जब उसके सदस्य एकल रूप में गायन, नर्तन करते हों।

लखनऊ का तबला घराना

अब आइये, लखनऊ तबला घराने के इतिहास या विकास पर नजर डाले। यह विवेचना लखनऊ घराने के उस्तादों, उनके वंशजों और शागिर्दों द्वारा दिये विवरणों पर आधारित है।

जैसा कि पूर्वोक्त विवरण से स्पष्ट है कि सन् 1775 में जब नवाब आसफुद्दौला ने लखनऊ को राजधानी बनाया तो उनके संगीतकार नये नवाब का संरक्षण प्राप्त करने के लिये बिखरते दिल्ली दरबार को छोड़कर लखनऊ चले आये। इनमें वे संगीतकार, कलाकार भी थे शुजाउद्दौला के जमाने में फैजाबाद में दरबारी नौकर के रूप में राज्याश्रित थे।

लखनऊ तबला घराने के एक शिष्य भूपाल राय चोधरी ने मुन्ने खां के बारे में लिखा है, ''एक बुजुर्ग, जो शौकिया तबला वादक थे, ने लखनऊ में मुन्ने खां का तबला सुना था। वह कहते थे कि आप खलीफा आबिद हुसैन

की बात करते हैं। लेकिन अगर आपने मुन्ने खां को सुना होता तो आप यही कहते कि आबिद खलीफा अपने बड़े भाई मुन्ने खां के सामने कुछ नहीं हैं।.... वह आबिद खलीफा से कहीं श्रेष्ठ थे।''

सन् 1890 में मुन्ने खां की मृत्यु हो गयी। फलस्वरूप लखनऊ घराने के समय एक संकट आ गया। परिवार में कोई ऐसा नहीं था जिसे अधिकारिक रूप से खलीफा बनाया जा सके। मुन्ने खां की मृत्यु पर बिन्दा–कालका महाराज ने शोक व्यक्त करते हुये कहा था कि ''हमने एक महान संगतकर्ता खो दिया है और उनके साथ ही लखनऊ घराने भी खत्म हो गया है। '' लेकिन हालात कभी एक से नहीं रहते। पारिस्थियाँ बदली। आबिद हुसैन भरपूर मेहनत और रियाज के बल पर 'नये खलीफा' के रूप में उभरे। अथक रियाज ने उनकी योग्यता और कला – प्रतिभा को इस सीमा तक उभार दिया कि देश भर में उनका कोई सानी नहीं था। उनका तबला वादन अद्वितीय तथा अनुपम था, और सच तो यह है कि खलीफा आबिद हुसैन लखनऊ घराने के मसीहा बनकर उभरे। उनके मशहूर शागिर्दों की एक बड़ी जमात, जिसमें पं. बीरू मिश्र, उस्ताद जहांगीर खां जोरा बगान, देवी प्रसन्न घोष, हरिन्द्र गांगुली और उनके भतीजे एवं दामाद खलीफा बाजिद हुसैन खां तथा उनके बेटे आफाक और आकाशवाणी लखनऊ के अकबार हुसैन खां भी शामिल है।

पद्मविभूषण पं0 बिरजू महाराज के अनुसार ''खलीफा आबिद हुसैन और लखनऊ के कथक घराने के महाराज बिन्दादीन और कालका महाराज के साथ घरेलू सम्बन्ध बहुत गहरे थे। ये तीनों झाऊलाल पुल के पास स्थित कथक घरानें की 'डयोढ़ी' में एक साथ रियाज किया करते थे।''

उस समय आबिद हुसैन हिन्दुस्तान के सर्वाधिक धन–सम्पन्न तबला वादक थे। उनके चाहने वालों और संरक्षकों ने उन्हें बहुत धन और जवाहरात वगैरह उपहार में दिये थे, देते रहते थे। उनके प्रशंसक पूरे भारत में थे और प्रायः उन्हें सुनने के लिये आमंत्रित किया करते थे। महमूद नगर के इलाके में उनके चार मकान थे। शहर के भीतर आने–जाने के लिए उने

पास अपनी एक 'फिटन' (बग्घी) थी। उनकी जिन्दगी का एक लम्बा हिस्सा कलकत्ता में गुजरा। वहीं शादी हुयी।

सन् 1926 में जब मैरिस म्यूजिक कॉलेज (सम्प्रति, भातखण्डे संगीत महाविद्यालय) का उद्घाटन हुआ, खलीफा आबिद हुसैन को तबला विषय में 'पहला प्रोफेसर' नियुक्त किया गया जहां वह जीवन के अन्तिम वर्षों तक अध्यापन करते रहे। इस कॉलेज के पहले बैच के स्नातक डा. एक. के. चौबे लिखते हैं, हम लोग बड़े भाग्यशाली थे जो लखनऊ के महान तबला वादक आबिद हुसैन को जानते थे, सीखते थे। उस समय के जितने समय के जितने समकालीन तबला वादक थे वे सभी उनकी बहुत इज्जत करते थे, डरते थे। उनका वादन अनुपम था, अनूठा था। वह बड़े इत्मीनान से और बिना किसी प्रयास के सहज भाव से तबला बजाते थे जिसका अपना ही सौन्दर्य था।, सन् 1936 में इस महान कलाकार की मृत्यु हो गई।

मुन्ने खां के मंझले भाई नादिर हुसैन के तीन पुत्र थे– रजा हुसैन उर्फ रज्जू खां, वाजिद और सज्जाद हुसैन। इनमें वाजिद हुसैन सबसे अलग थे। वह अपनी कला के प्रति पूर्ण समर्पित थे और जीवन पर्यन्त रियाज करते रहे। हालांकि रज्जू खां, सज्जाद खां और भतीजे मुस्तफा हुसैन व्यावसायिक तबला वादक थे। परन्तु इन तीनों में वैसी योग्यता नहीं थी, जैसी कि वाजिद हुसैन या उनके पुत्र आफाक हुसैन में शास्त्रीयता का रंग अधिक था। वाजिद हुसैन की जोड़बन्दी की गति देखते ही बनती थी। बेहद कठिन बन्दिशों को वह इतनी द्रुत गति से और इतनी सहजता से बजाते थे। कि उनका कोई सानी नहीं था। वह एक उत्कृष्ट कोटि के समर्थ तबलावादक थे। उस्ताद अहमद जान थिरकुआ और हबीबुद्दीन खां की तरह वाजिद हुसैन मूलतः एकल तबला वादक थे।

कुछ समय के लिये, अत्यन्त सरल स्वभाव के वाजिद खलीफा ने लखनऊ आकाशवाणी में स्टाफ कलाकार के रूप में भी काम किया। 24 मई, 1978 को लखनऊ घराने का यह महान कलाकार अन्तिम महायात्रा को प्रयाण कर गया। वाजिद खलीफा की मृत्यु के उपरान्त उनके पुत्र आफाक

हुसैन खां लखनऊ घराने के खलीफा हो गये। आफाक हुसैन लखनऊ में ज्यादातर 'आफाक भाई' के नाम से प्रसिद्ध थे। माह नवम्बर, 1930 में जन्मे आफाक साहब ने चार साल की उम्र सें ही अपने नाना आबिद हुसैन से तबला सीखने शुरू कर दिया था। सन् 1936 में जब खलीफा आबिद हुसैन का देहान्त हुआ, उस समय तक छः वर्ष की आयु में ही आफाक साहब लगभग 25 आधारभूत बन्दिशें सीख चुके थे। आफाक साहब की माँ काजमी बेगम एक पढ़ी–लिखी बुद्धिमान महिला थीं। सुशिक्षित होने के कारण वह अरबी, फारसी और उर्दू बड़ी आसानी से लिख – पढ़ सकती थी। कहा जाता है, उन्होंने पिता की बहुत सी बन्दिशें लिख रखी थीं और बहुत सी बन्दिशें उनकी यादाश्त में सुरक्षित थीं। परिणामस्वरूप आफाक हुसैन साहब की वादन कला में उनके पिता वाजिद हुसैन द्वारा दी गयी तालीम के साथ माता काजमी बेगम का भी अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान रहा। आफाक भाई को तमाम बन्दिशें अपनी माँ से प्राप्त हुई थीं। सन् 1958 में आफाक साहब परिवार को लखनऊ में छोड़कर कलकत्ता चलें गये। वहां उन्होंने बड़ी खूबसूरती से अपने वक्त के बड़े से बडे संगीतकारों के साथ तबला संगत की और एक अत्यन्त सफल संगतकर्ता के रूप में सुस्थापित हो गये। उस्ताद बड़े गुलाम अली खां और कालान्तर में उस्ताद अमीर खां जैसे महान् गायक भी संगत के लिये आफाक साहब को ही प्राथमिकता देते थे। अमीर खां साहब के साथ आफाक साहब को ही प्राथमिकता देते थे। अमीर खां साहब के साथ आफाक साहब के कई 'रिकार्ड' बने। आफाक साहब की कामयाबी ने कलकत्ते के तत्कालीन तबला वादकों में ईर्ष्या और द्वेषमूलक भावनाओं की आग को भड़का दिया। परिणामः कलकत्ता के तबला वादको ने आफाक साहब के खिलाफ साजिस रची ताकि कामयाबी की मंजिल की तरफ बढ़ते आफाक हुसैन साहब के कदमों को रोका जा सके। अल्लाह की मर्जी। आफाक साहब उनकी साजिश का शिकार बन गये। निरन्तर बढ़ती लोकप्रियता को एक गम्भीर झटका लगा। इस झटके ने, या कहें उस साजिश ने आफाक साहब को डिप्रेशन की स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया।

हालात उलट चुके थे। अंततः आफाक भाई ने सन् 1971 में कलकत्ता छोड़ दिया और लखनऊ वापस आ गये।

इस समय तक लखनऊ में उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी की स्थापना 1963 में हो चुकी थी। सन् 1972 में लखनऊ कथक घराने के भाव – सम्राट पं. लच्छू महाराज मुम्बई और फिल्मी दुनिया को सदा के लिये अलविदा कह कर लखनऊ वापस आ गये। उनके तथा अकादमी के प्रथम संस्थापक सचिव श्री नरेन्द्र मोहन मेहरोत्रा के सद्प्रयासों से अकादमी के अन्तर्गत कथक केंद्र के प्रथम गुरू – निदेशक नियुक्त किये गये थे। कम बोलते थे। उम्र भी उनकी 42 वर्ष थी। अतः लच्छू महाराज ने आफाक साहब को चुना। कारण यह भी था, आफाक साहब एक तो लखनऊ घराने के सिद्धहस्त, कुशल और गुणी कलाकार थे। दूसरे, आफाक साहब खलीफा आबिद हुसैन लखनऊ कथक घराने क॓ कालका – बिन्दादीन महाराज के मित्र भी थे और उनके संगतकर्ता भी। इसलिये लच्छू महाराज का आफाक साहब के प्रति लगाव स्वाभाविक था। इस तरह आफाक साहब की नियुक्ति कथक केन्द्र में तबला के संगतकर्ता के रूप में हो गयी।

कथक केन्द्र में आफाक साहब ज्यादा नहीं टिक सके। 15 सितंबर 1977 को आफाक साहब ने कथक केन्द्र छोड़ दिया और वह लखनऊ दूरदर्शन केन्द्र में स्टाफ आर्टिस्ट के रूप में नियुक्त हो गये। जहां वह जीवन के अन्तिम दिनों तक कार्यरत रहे। जहाँ वह अपने सरल स्वभाव की वजह से 'बाबा' के नाम से मशहूर हुये। अचानक 18 फरवरी, 1990 को आफाक साहब को हृदयाघात हुआ और लखनऊ घराने का यह कलाकार काल के साथ अनन्त महायात्रा में चल दिया।

आफाक साहब के दो लड़के हुए– इल्मास, हुसैन, जिनका जन्म 1959 में तथा छोटे–बेटे इलियास हुसैन का जन्म 1978 में हुआ। इल्मास की तबला – तालीम, बाबा वाजिद हुसैन से आरम्भ हुई। कठोर प्रशिक्षण और जबरदस्त रियाज ने इल्मास को दिशा प्रदान की। परिणाम अच्छा ही हुआ। अपने बाबा के जीवनकाल में ही इल्मास ने अपनी कला का प्रदर्शन

आरम्भ कर दिया। अपने पिता आफाक साहब और बाबा वाजिद खलीफा की तरह वह एक व्यावसायिक तबलावादक के रूप में उभरा और नियमित रूप से आकाशवाणी में उनके कार्यक्रम होने लगे। दोनों बाप–बेटे हर साल संगीत सम्मेलनों और सांगीतिक उत्सवों मे सक्रिय रूप से भाग लेने के लिये कई बार हिन्दुस्तान से बाहर विदेशों में जैसे – फ्रांस, इंग्लैण्ड, कनाडा, सोवियत रूस जाया करते। इल्मास की कला धीरे–धीरे परवान चढ़ी। इसी बीच आफाक साहब ने संगीत नाटक अकादमी से त्यागपत्र दे दिया और लखनऊ दूरदर्शन में स्टाफ आर्टिस्ट हो गये। अकादमी के अन्तर्गत स्थापित कथक केन्द्र में आफाक हो गये। अकादमी के अन्तर्गत स्थापित कथक केन्द्र में आफाक साहब जैसे सिद्धहस्त कला संगतकर्ता का पद खाली हो गया। सन् 1977 में उस पद पर इल्मास हुसैन को नियुक्त कर दिया गया। लेकिन इल्मास हुसैन भी केन्द्र में ज्यादा टिक नहीं पाये। आफाक साहब की अचानक मृत्यु ने इल्मास के सिर पर 'खलीफा' का ताज रख दिया। एक ऐसा दायित्व इल्मास के कन्धों पर आन पड़ा जिसके लिये शायद वह अभी तैयार नहीं था, फिर भी दायित्व – बोध तो था ही। पिता की मृत्यु के बाद कुछ ही महीनों में इल्मास की नियुक्त आफाक साहब के पद पर दूरदर्शन लखनऊ में हो गयी, फलस्वरूप इल्मास ने कथक केन्द्र छोड़ दिया। सम्प्रति इल्मास हुसैन वहीं कार्य करते हैं।

इल्मास के छोटे भाई इलियास हुसैन ने सन् 1984 से तबला सीखना शुरू किया था। लेकिन यह प्रशिक्षण नियमित नहीं था। आफाक साहब अपने इस लड़के के प्रति, उसके भविष्य के प्रति सदा आशंकित रहते थे। वह प्रायः कहते थे, जब तक इलियास तबले के प्रति विशेष रूचि और अपेक्षित प्रतिभा नहीं दिखाता, मैं उसे तबले की शिक्षा नहीं दूँगा, उसे व्यावसायिक संगीतकार नहीं बनने दूंगा। शायद इसीलिये आफाक साहब ने इलियास को स्कूली शिक्षा की ओर मोड़ दिया। उनका विश्वास था, यह शिक्षा इलियास के भविष्य को सुरक्षित कर देगी। शायद पिता की आकस्मिक मृत्यु ने उसे आत्म– बोध करा दिया। सम्प्रति, वह इल्मास के

निर्देशन में तबला सीख रहा है।

इल्मास खाँ के पुत्र आमिर हुसैन खाँ अपने पिता से तबले की शिक्षा ग्रहण कर रहे है। जो अभी मात्र 18 वर्ष के हैं। सच तो यह है कि लखनऊ घराने का पूरा दायित्व इस समय खलीफा इल्मास हुसैन व उनके छोटे भाई इलियास हुसैन पर है। आशा की जानी चाहिये कि इल्मास हुसैन अपने इस दायित्व को सफलतापूर्वक निभा सकेगें और इल्मास हुसैन आशा करते हैं कि उनके छोटे भाई इलियास हुसैन और पुत्र आमिर हुसैन आने वाले समय में लखनऊ तबला घराने को नया आयाम देंगे और अपने बुजुर्गों के नाम व इज्जत को बरकरार रखेंगे।